मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम गणी
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं

पंच परमेष्ठी
णमो अरिहंताण
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

अर्पण

कल्याणमूर्ति श्रीसद्गुरुदेवको
जिन्होंने इस पामर पर अपार उपकार किया है। जो स्वयं
मोक्षमार्ग में विचर रहे हैं और अपनी दिव्य श्रुतधारा
द्वारा भरतभूमि के जीवों को सततरूप से मोक्षमार्ग
दर्शा रहे हैं जिनकी पवित्र वाणी में मोक्षमार्ग के
मूलरूप कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन का माहात्म्य
निरन्तर बरस रहा है और जिनकी परम कृपा से
यह ग्रन्थ तैयार हुआ है – ऐसे कल्याणमूर्ति
सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझानेवाले
कल्याणमूर्ति श्री सद्गुरुदेव को यह
ग्रन्थ अत्यन्त भक्तिभाव से
अर्पण करता हूँ......

– दासानुदास रामजी

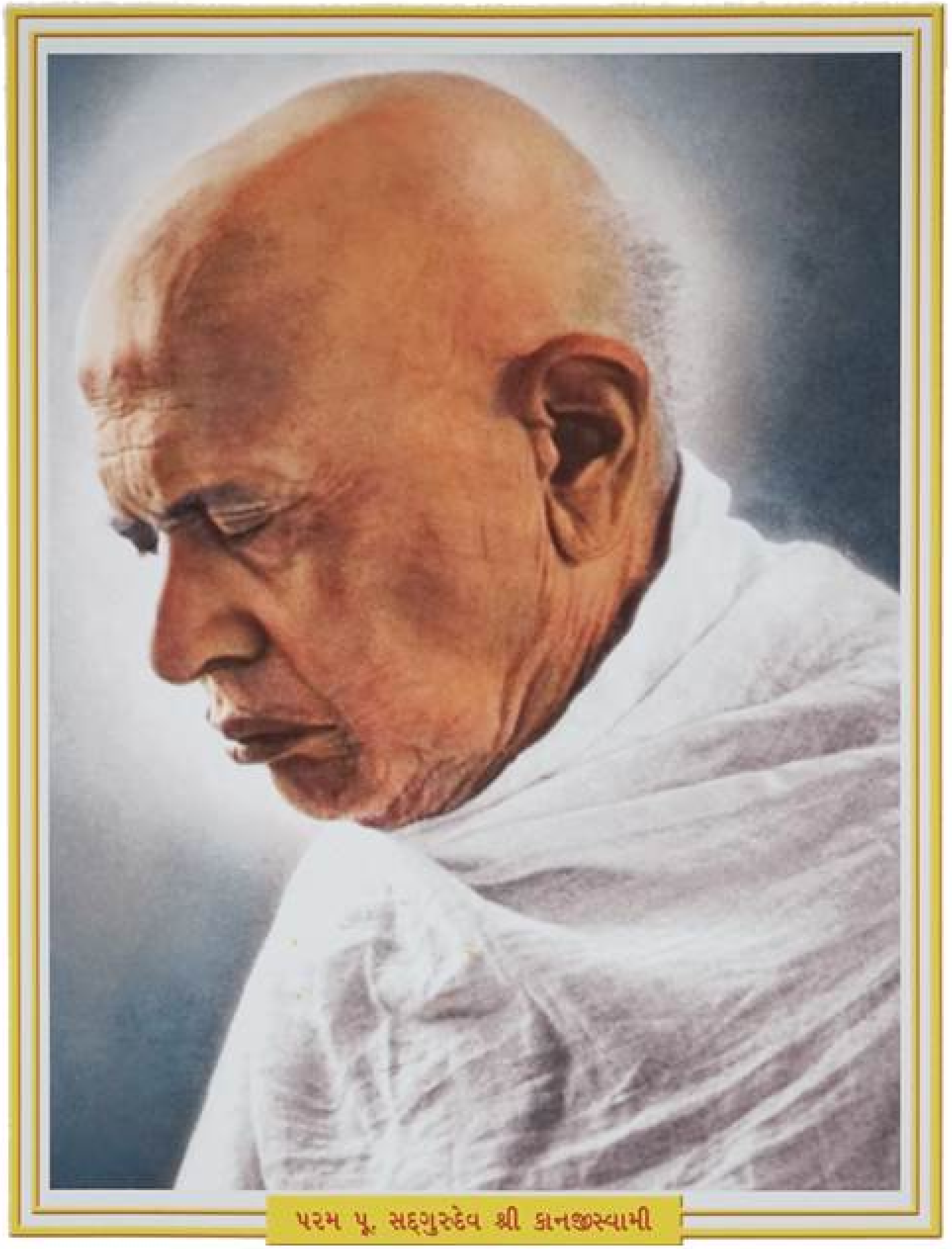
પરમ પૂ. સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

अध्याय २, सूत्र १ - जीव के असाधारण भाव

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्यस्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ - [जीवस्य] जीव के [औपशमिकक्षायिकौ] औपशमिक और क्षायिक [भावौ] भाव [च मिश्रः] और मिश्र तथा [औदयिक-पारिणामिकौ च] औदयिक और पारिणामिक, यह पाँच भाव [स्वतत्त्वम्] निजभाव हैं, अर्थात् यह जीव के अतिरिक्त दूसरे में नहीं होते ।

अध्याय २, सूत्र २ - पाँच भाव के भेद

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा: यथाक्रमम् ॥ २ ॥

- पाँच भाव
  - औपशमिक
    - २ भेद
  - क्षायिक
    - ९ भेद
  - क्षायोपशमिक
    - १८ भेद
  - औदयिक
    - २१ भेद
  - पारिणामिक
    - ३ भेद

अध्याय २, सूत्र ३ - औपशमिकभाव के दो भेद

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

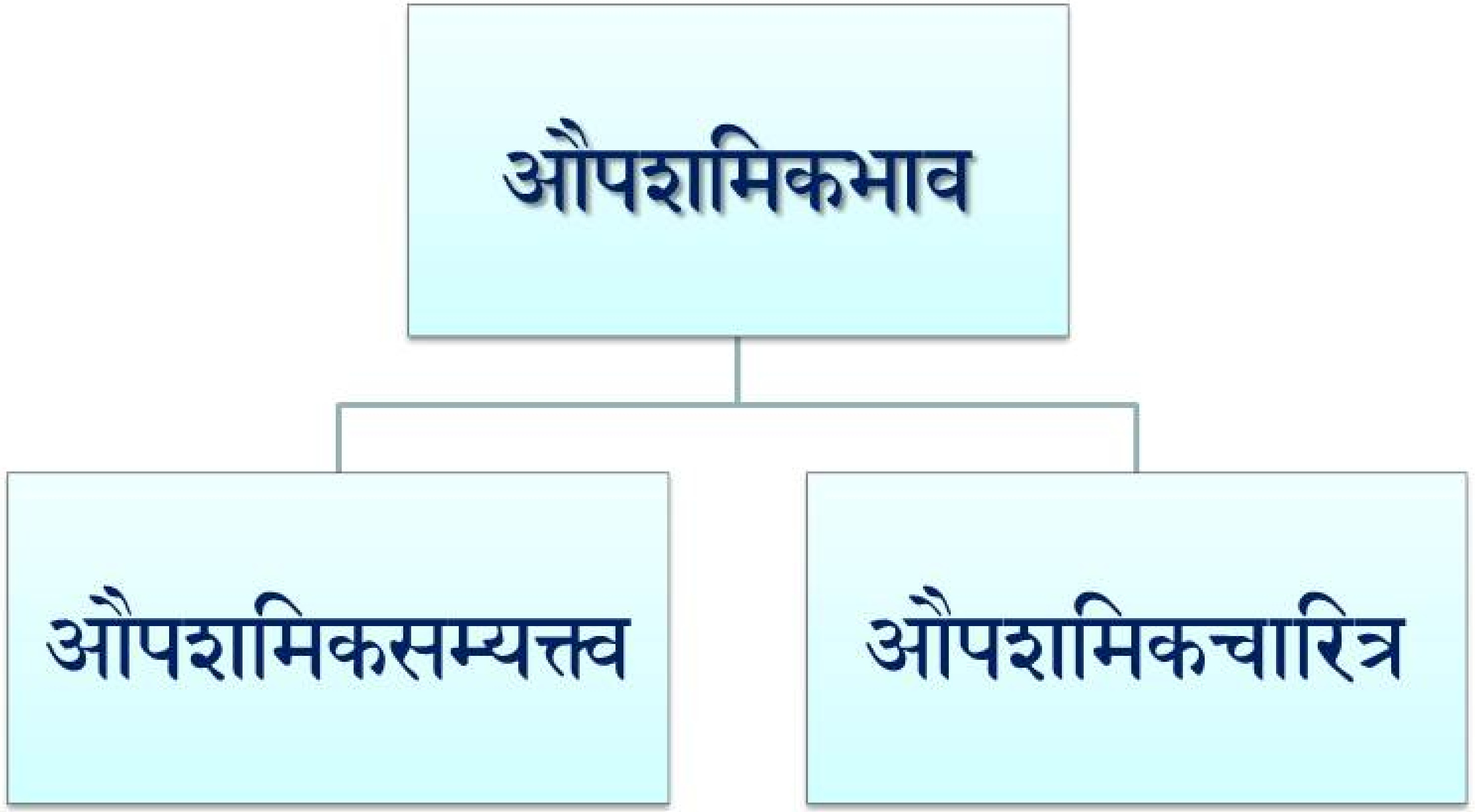

औपशमिकभाव

औपशमिकसम्यक्त्व

औपशमिकचारित्र

अध्याय २, सूत्र ४ - क्षायिकभाव के ९भेद

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च॥४॥

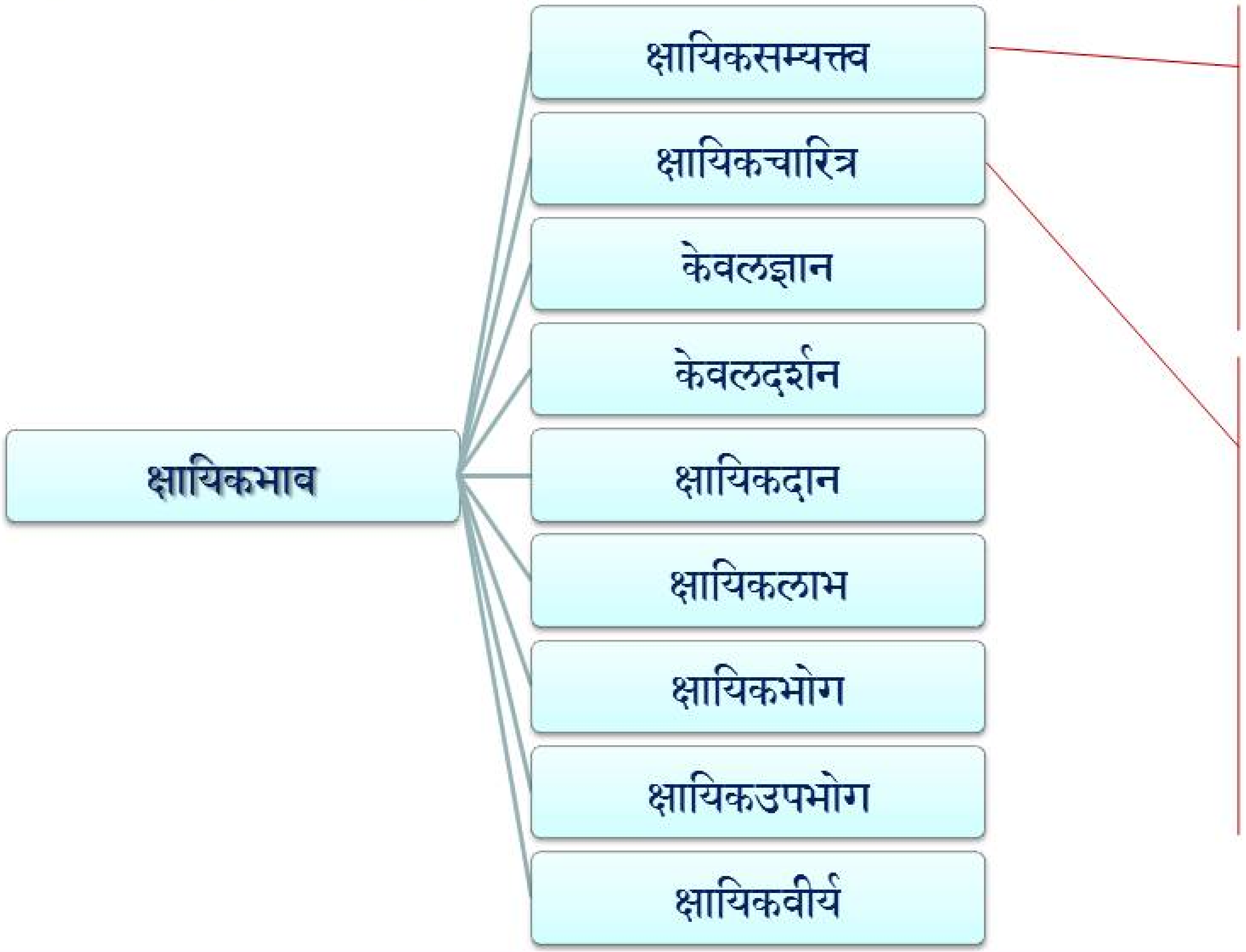
क्षायिकभाव
क्षायिकसम्यक्त्व
क्षायिकचारित्र
केवलज्ञान
केवलदर्शन
क्षायिकदान
क्षायिकलाभ
क्षायिकभोग
क्षायिकउपभोग
क्षायिकवीर्य

अपने मूलस्वरूप की दृढ़तम प्रतीतिरूप पर्याय, क्षायिक सम्यक्त्व है; जब वह प्रगट होती है, तब मिथ्यात्वकी तीन और अनन्तानुबन्धी की चार, इस प्रकार कुल सात कर्म-प्रकृतियोंका स्वयं क्षय होता है।

अपने स्वरूप का पूर्ण चारित्र प्रगट होना, वह क्षायिक चारित्र है। उस समय मोहनीय कर्म की शेष २१ प्रकृतियों का क्षय होता है। इस प्रकार जब कर्म का स्वयं क्षय होता है, तब मात्र उपचार से यह कहा जाता है कि “जीव ने कर्म का क्षय किया है”; परमार्थ से तो जीव ने अपनी अवस्था में पुरुषार्थ किया है, जड़ प्रकृति में नहीं ।

अध्याय २, सूत्र ५ - क्षायोपशमिक भाव के १८ भेद

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्ध्यश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदा: सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

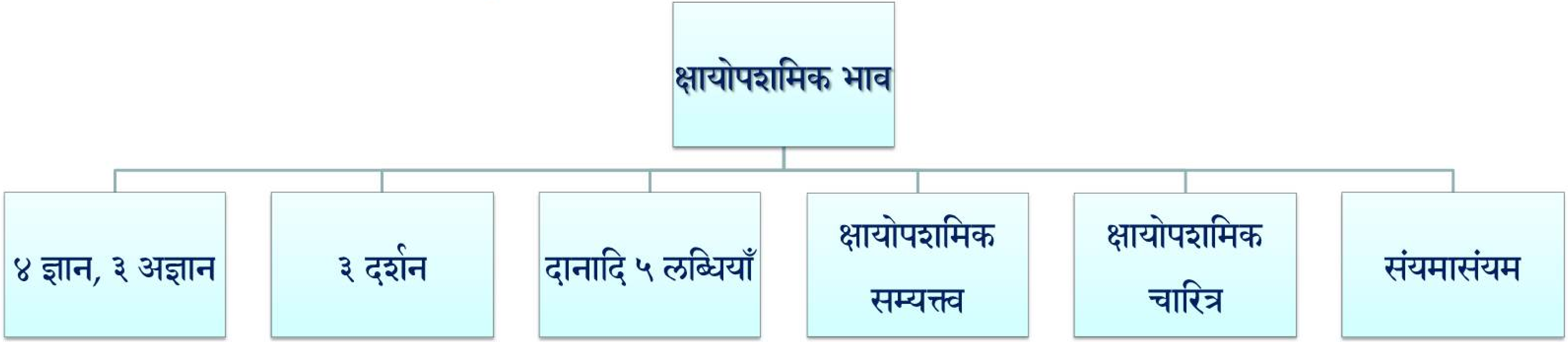
क्षायोपशमिक भाव
४ ज्ञान, ३ अज्ञान
३ दर्शन
दानादि ५ लब्धियाँ
क्षायोपशमिक सम्यक्त्व
क्षायोपशमिक चारित्र
संयमासंयम

चक्षु, अचक्षु और अवधि, ये तीन दर्शन

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय, यह चार ज्ञान; तथा
कुमति, कुश्रुत और कुअवधि - ये तीन अज्ञान ।

क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य
- ये पाँच लब्धियाँ

अध्याय २, सूत्र ६ - औदयिकभाव के २१ भेद

गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्या-चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकषड् भेदाः ॥ ६ ॥

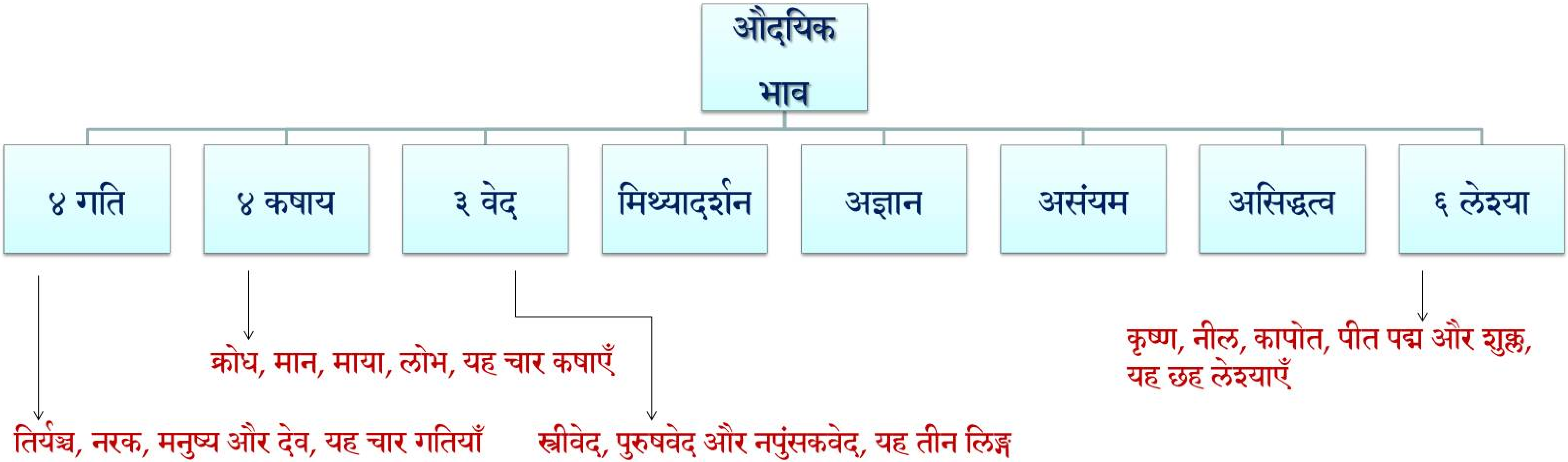

औदयिक भाव

- ४ गति
- ४ कषाय
- ३ वेद
- मिथ्यादर्शन
- अज्ञान
- असंयम
- असिद्धत्व
- ६ लेश्या

तिर्यञ्च, नरक, मनुष्य और देव, यह चार गतियाँ

क्रोध, मान, माया, लोभ, यह चार कषाएँ

स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, यह तीन लिङ्ग

कृष्ण, नील, कापोत, पीत पद्म और शुक्ल, यह छह लेश्याएँ

अध्याय २, सूत्र ७ - पारिणामिकभाव के ३ भेद

जीवभव्याभव्यत्वानि च॥ ॥७॥

कर्मोंदय की अपेक्षा के बिना आत्मा में जो गुण मूलतः स्वभावमात्र ही हों, उन्हें 'पारिणामिक' कहते हैं।

पारिणामिकभाव
- जीवत्व
- भव्यत्व
- अभव्यत्व

सूत्र के अन्त में 'च' शब्द से अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि सामान्यगुणों का भी ग्रहण होता है।

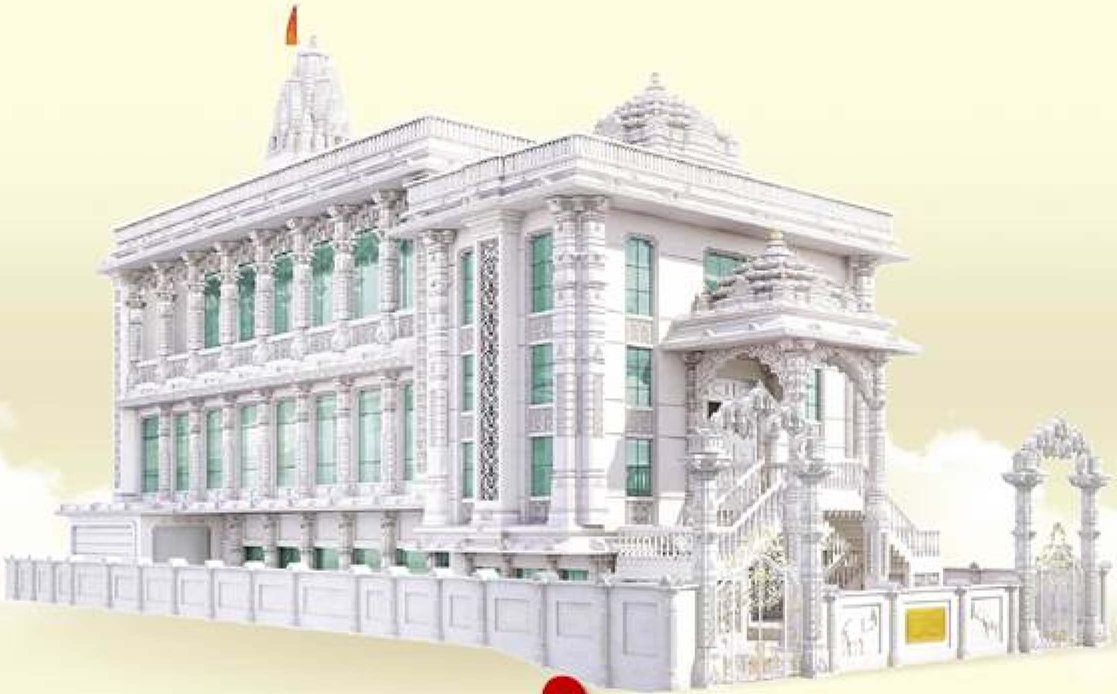

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय २, सूत्र ८

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ - [लक्षणम्] जीव का लक्षण [उपयोगः] उपयोग है।

चैतन्यगुण के साथ सम्बन्ध रखनेवाले जीव के परिणाम को उपयोग कहते हैं ।

अध्याय २, सूत्र ८ - जीव का लक्षण

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

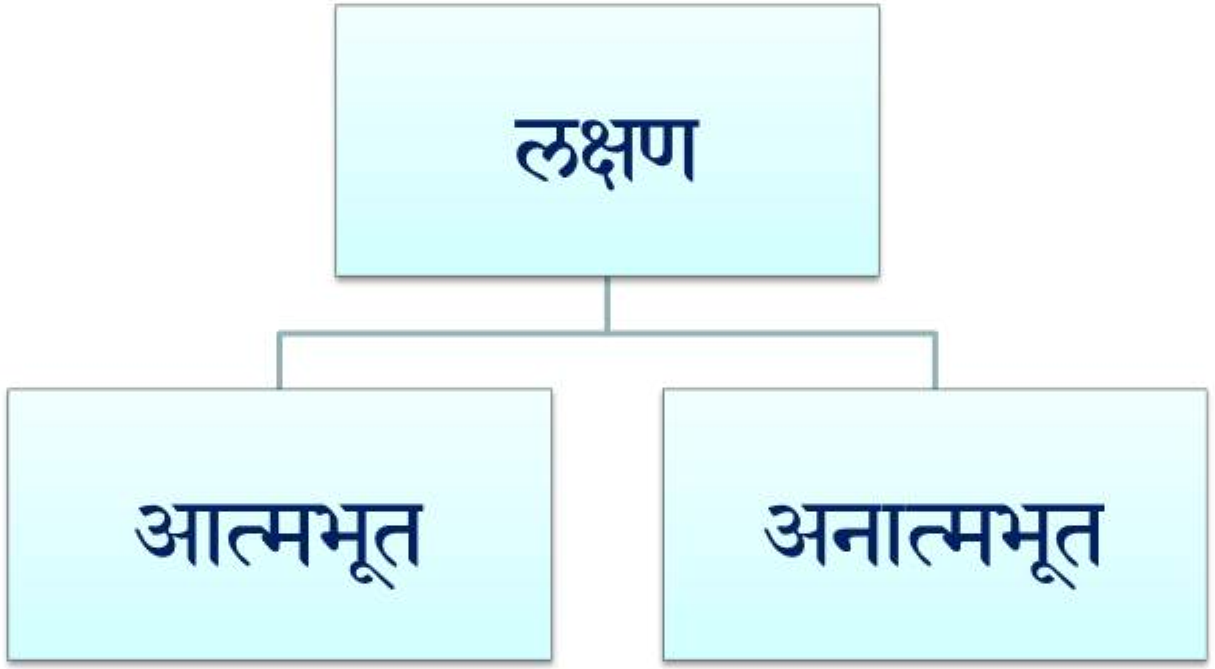
लक्षण

आत्मभूत

अनात्मभूत

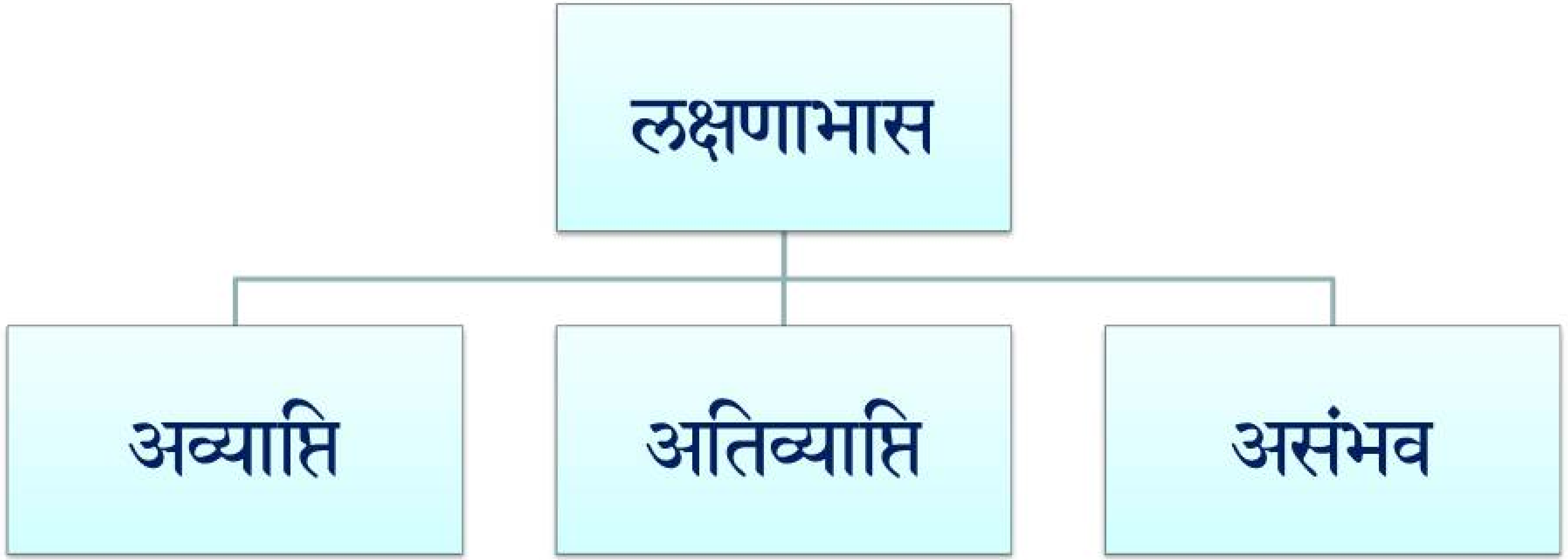
लक्षणाभास

अव्याप्ति

अतिव्याप्ति

असंभव

अध्याय २, सूत्र ८ - जीव का लक्षण

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

लक्षण –

बहुत से मिले हुए पदार्थों में से किसी एक पदार्थ को अलग करनेवाले हेतु (साधन) को लक्षण कहते हैं।

उपयोग को 'ज्ञान-दर्शन' भी कहते हैं, वह सभी जीवों में होता है और जीव के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में नहीं होता; इसलिए उसे जीव का असाधारण गुण अथवा लक्षण कहते हैं और वह सद्भूत (आत्मभूत) लक्षण है; इसलिए सब जीवों में सदा होता है ।

अध्याय २, सूत्र ८ - जीव का लक्षण

- सोने-चाँदी का एक पिण्ड होने पर भी, उसमें सोना अपने पीलेपन आदि् लक्षण से और चाँदी अपने शुक्लादि् लक्षण से दोनों अलग-अलग हैं, ऐसा उनका भेद् जाना जा सकता है।
- जीव और कर्म-नोकर्म (शरीर) एक क्षेत्र में होने पर भी जीव अपने उपयोग-लक्षकेण द्वारा कर्म-नोकर्मसे अलग है और द्रव्यकर्म-नोकर्म अपने स्पर्शादि् लक्षण के द्वारा जीव से अलग हैं; इस प्रकार उनका भेद् प्रत्यक्ष जाना जा सकता है।

अध्याय २, सूत्र ८ - जीव का लक्षण

प्रश्न - उपयोग का अर्थ क्या है ?

उत्तर - चैतन्य, आत्मा का स्वभाव है, उस चैतन्यस्वभाव का अनुसरण करनेवाले आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते हैं। उपयोग जीव का अबाधित लक्षण है।

सिद्धान्त

मैं, शरीरादि के कार्य कर सकता हूँ और मैं उन्हें हिला-डुला सकता हूँ - ऐसा जो जीव मानते हैं, वे चेतन और जड़द्रव्य को एकरूप मानते हैं। उनकी इस मिथ्यामान्यता को छुड़ाने के लिए और जीवद्रव्य, जड़ से सर्वथा भिन्न है, यह बताने के लिए इस सूत्र में जीव का असाधारण लक्षण 'उपयोग' है - ऐसा बताया गया है।

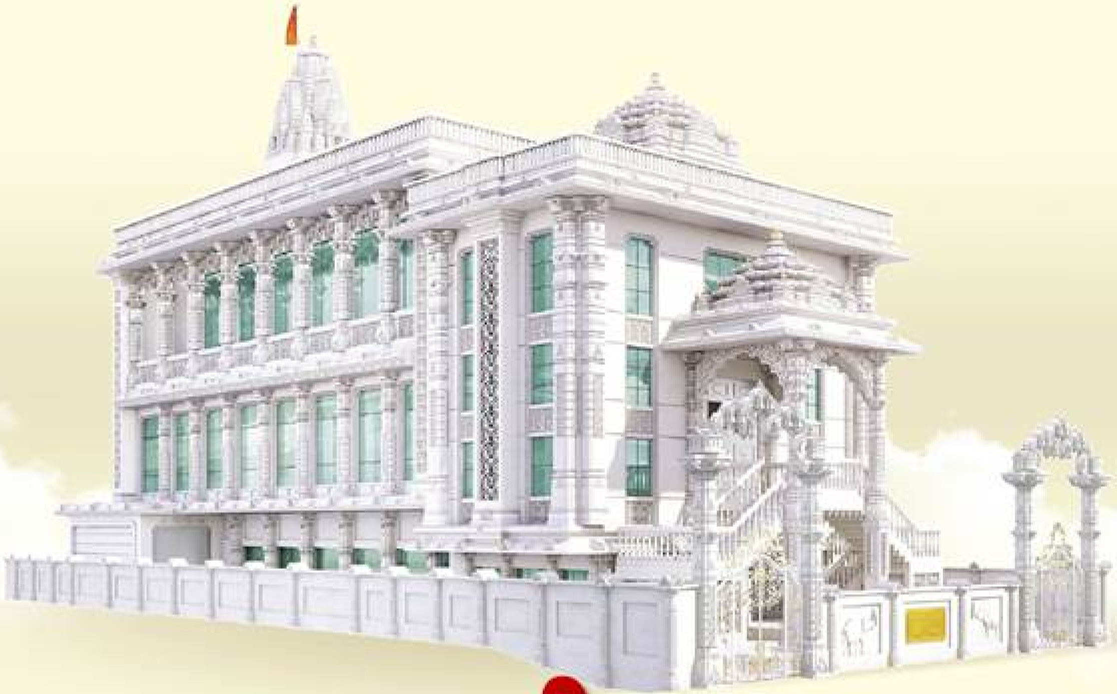

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय २, सूत्र ९

अध्याय २, सूत्र ९ - उपयोग के भेद

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

अर्थ - [सः] वह उपयोग [द्विविधः] ज्ञानगोपयोग और दर्शनोपयोग के भेद से दो प्रकार का है और वे क्रमशः [अष्ट चतुः भेदः] आठ और चार भेदसहित हैं, अर्थात् ज्ञानोपयोग के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल (यह पाँच सम्यग्ज्ञान) और कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि (यह तीन मिथ्याज्ञान) इस प्रकार आठ भेद हैं तथा दर्शनोपयोग के चक्षु, अचक्षु, अवधि तथा केवल; इस प्रकार चार भेद हैं । इस प्रकार ज्ञान के आठ और दर्शन के चार भेद मिलकर उपयोग के कुल बारह भेद हैं।

अध्याय २, सूत्र ९ - उपयोग के भेद

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

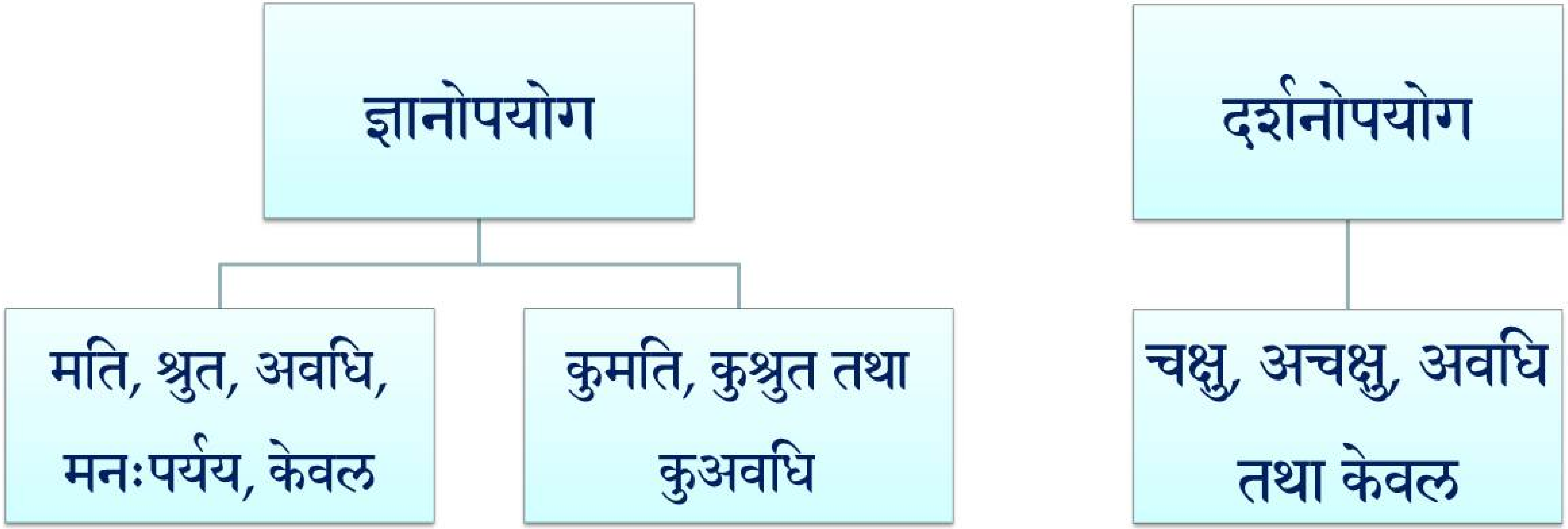

- ज्ञानोपयोग
  - मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल
  - कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि
- दर्शनोपयोग
  - चक्षु, अचक्षु, अवधि तथा केवल

अध्याय २, सूत्र ९ - उपयोग के भेद

दर्शनोपयोग

पूर्व विषय से हटना और बाद के विषय की ओर उत्सुक होना, ज्ञान की पर्याय नहीं है; इसलिए उस चेतना पर्याय को 'दर्शनोपयोग' कहा जाता है।

आत्मा के उपयोग का पदार्थोन्मुख होना दर्शन है।

ज्ञानोपयोग

आत्मा अथवा अन्य पदार्थ का उपयोगात्मक भेदविज्ञान होना ही आकार है, पदार्थों के भेदाभेद के लिए होनेवाले निश्चयात्मक बोध को ही आकार कहते हैं, अर्थात् पदार्थों का जानना ही आकार है और वह ज्ञान का स्वरूप है।

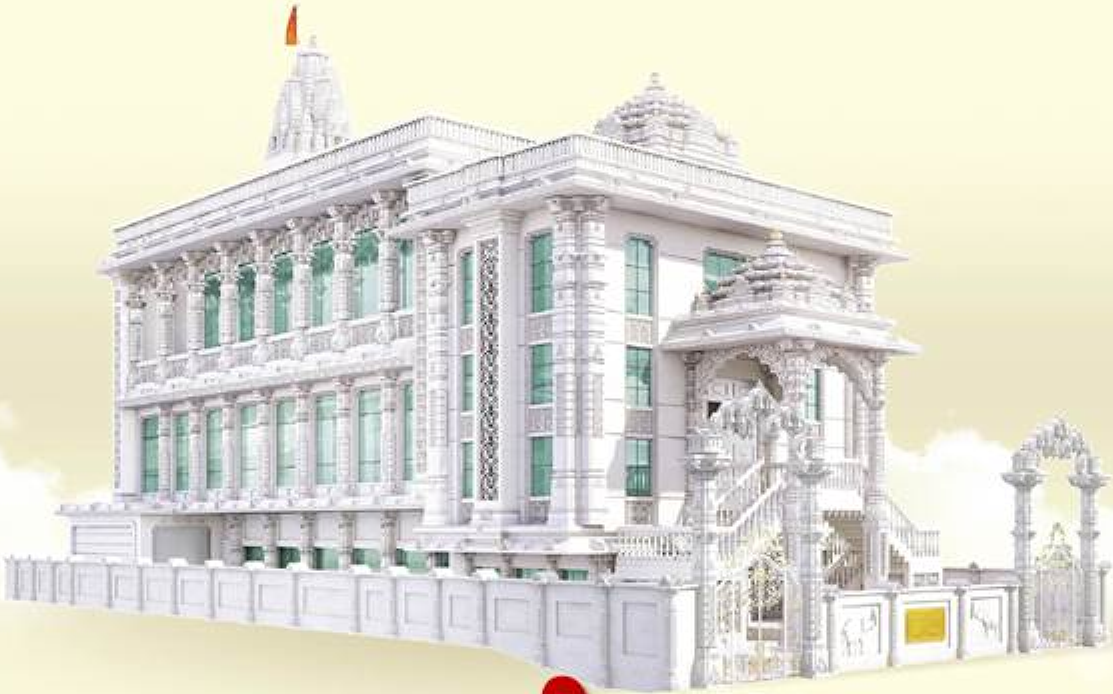

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय २, सूत्र १०

अध्याय २, सूत्र १० – जीव के भेद

संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥

अर्थ - जीव [संसारिणः] संसारी [च] और [मुक्ताः] मुक्त-ऐसे दो प्रकार के हैं। कर्मसहित जीवों को संसारी और कर्मरहित जीवों को मुक्त कहते हैं।

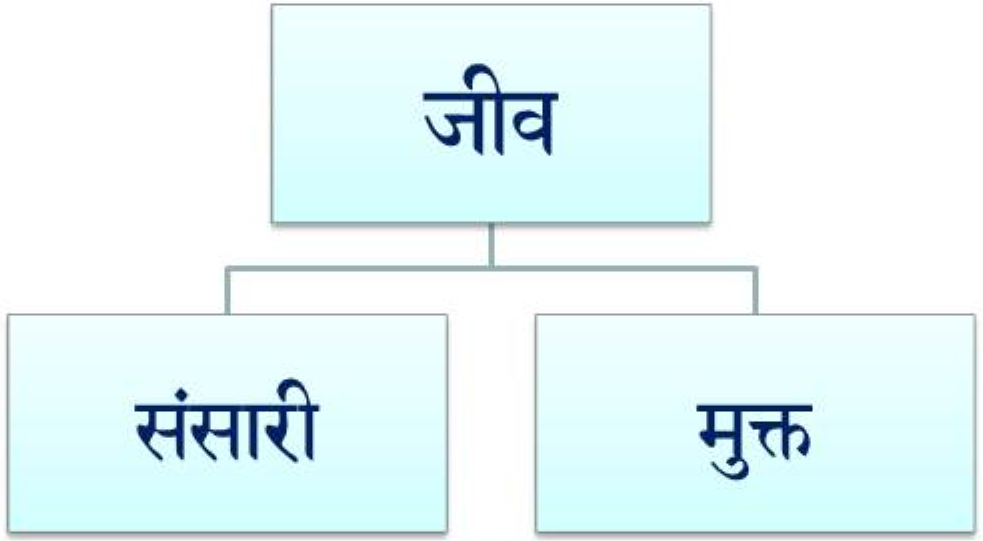

अध्याय २, सूत्र १० – जीव के भेद

- जीवों की वर्तमान दशा के ये भेद हैं । वे भेद, पर्यायदृष्टि से हैं। द्रव्यदृष्टि से सब जीव एक समान हैं ।
- पर्यायों के भेद दिखानेवाला व्यवहार, परमार्थ को समझाने के लिए कहा जाता है, उसे पकड़ रखने के लिए नहीं।
- इससे यह समझना चाहि कि पर्याय में चाहे जैसे भेद हों, तथापि त्रैकालिक ध्रुवस्वरूप में कभी भेद नहीं होता। ‘सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे सो होय ‘|
- अपने शुद्ध स्वरूपसे भलीभाँति खिसक जाना (हट जाना), सो संसार है।
- जीव का संसार स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी, मकान इत्यादि नहीं हैं, वे तो जगत् के स्वतन्त्र पदार्थ हैं ।जीव उन पदार्थों में अपनेपन की कल्पना करके उन्हें इष्ट अनिष्ट मानता है, इत्यादि अशुद्धभाव को संसार कहते हैं ।

अध्याय २, सूत्र १० – जीव के भेद

- संसारी और मुक्त जीवों में से संसारी जीव प्रधानता से उपयोगवान् है, और मुक्त जीव गौणरूप से उपयोगवान् है ।
- जीव की संसारी दशा होने का कारण आत्मस्वरूप सम्बन्धी भ्रम है; उस भ्रम को मिथ्यादर्शन कहते हैं। जीव अपनी भूल से अनादि काल से मिथ्यादृष्टि है; वह स्वतः अपनी पात्रता का विकास करके सत्समागम से सम्यग्दृष्टि होता है।
- उस भूलरूप मिथ्यादर्शन के कारण से जीव पाँच प्रकार के परिवर्तन किया करते हैं - संसार-चक्र चलता रहता है।
- परिवर्तन के पाँच भेद होते हैं -(१) द्रव्यपरिवर्तन, (२) क्षेत्रपरिवर्तन, (३) कालपरिवर्तन, (४) भवपरिवर्तन और (५) भावपरिवर्तन। परिवर्तन को संसरण अथवा परावर्तन भी कहते हैं।

जिनवाणी स्तुति

तीर्थंकरो जगतना जयवंत वर्तो,
ॐकारनाद् जिननो जयवंत वर्तो;
जिननां समोसरण सौ जयवंत वर्तो,
ने तीर्थ चार जगमां जयवंत वर्तो।

अहो! उपकार जिनवरनो, कुंदनो द्वनि दिव्यनो;
जिन-कुंद्-द्वनि आप्या, अहो! ते गुरु कहाननो।
जिन-कुंद्-द्वनि आप्या, अहो! ते भगवती मातनो।